R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-25, अङ्क-5 मई 2025 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

षट्खंडागम शास्त्र की महिमा अगम अपार।
भावसहित अध्ययन से मिलता सौख्य अपार॥

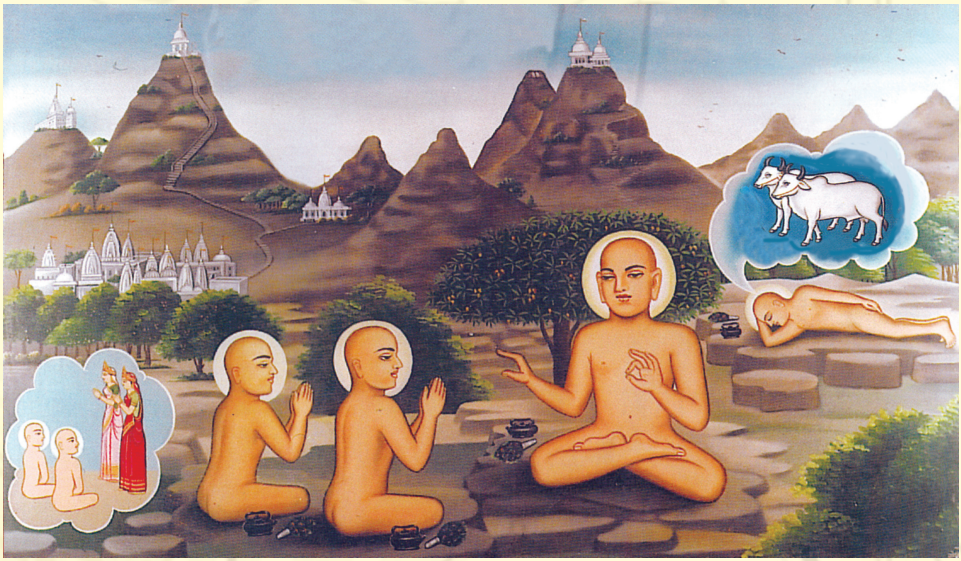

षट्खंडागम सत्प्ररूपणा का विधान करता हूँ आज।
श्री धरसेनाचार्य भूतबलि पुष्पदंत को हृदय विराज॥

स्वानुभूति होने पर जीव को कैसा साक्षात्कार होता है ?

स्वानुभूति होने पर, अनाकुल-आह्लादमय, एक, समस्त ही विश्व पर तैरता विघानघन परमपदार्थ-परमात्मा अनुभव में आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता - श्रद्धा में नहीं आता, इसलिए स्वानुभूति के बिना सम्यग्दर्शन का - धर्म का प्रारम्भ नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करने के लिये जीव को क्या करना ?

स्वानुभूति की प्राप्ति के लिये ज्ञानस्वभावी आत्मा का चाहे जिस प्रकार भी दृढ़ निर्णय करना। ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय दृढ़ करने में सहायभूत तत्त्वज्ञान का - द्रव्यों का स्वयंसिद्ध सत्पना और स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व का सच्चा स्वरूप, जीव और शरीर की बिलकुल भिन्न-भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्म के लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयों के सच्चे बोध का - अभ्यास करना चाहिए। तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक प्रयोजनभूत सत्यों के अभ्यास के साथ-साथ सर्व तत्त्वज्ञान का सिरमौर-मुकुटमणि जो शुद्ध द्रव्यसामान्य अर्थात् परम पारिणामिकभाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्य सामान्य - जो स्वानुभूति का आधार है, सम्यग्दर्शन का आश्रय है, मोक्षमार्ग का आलम्बन है, सर्व शुद्धभावों का नाथ है - उसकी दिव्य महिमा हृदय में सर्वाधिकरूप से अंकित करनेयोग्य है। उस निजशुद्धात्मद्रव्य-सामान्य का आश्रय करने से ही अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वानुभूति प्राप्त होती है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

मंगलार्थी छात्रों द्वारा तत्त्व प्रचार

ग्रीष्मावकाश के दौरान भूतपूर्व मंगलार्थी संयम जैन आगरा और वर्तमान मंगलार्थी पर्व जैन दिल्ली द्वारा कानपुर में शिक्षण शिविर का सफल संचालन किया गया। जबलपुर में मंगलार्थी अर्हम्, अन्वय द्वारा, सनावद में मंगलार्थी अविरुद्ध द्वारा, दिल्ली में मंगलार्थी प्रत्यक्ष द्वारा, सागर में मंगलार्थी आराध्य और आगम द्वारा, गढ़ाकोटा में मंगलार्थी अभिषेक द्वारा पाठशाला और कक्षाओं का संचालन किया गया।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र (e-पत्रिका)

वर्ष-25, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2551; वि.सं. 2082) मई 2025

प्रभु की मूरत जो हमने देखी

प्रभु की मूरत जो हमने देखी, वीतरागता झलक रही है।
वीतरागता झलक रही है, सर्वज्ञता झलक रही है ॥
प्रभु की मूरत जो हमने देखी,....
शास्त्रों गुरुओं से हमने जाना, हितोपदेशी प्रभु पहिचाना।
हितोपदेशी प्रभु पहिचाना, तो अंतरमें श्रद्धा उमड़ रही है ॥
प्रभु की मूरत जो हमने देखी,....
पदमासन खडगासन धारण, धरे फिरे भेष बहु वारन।
चतुर्गति दुःख के कारण, नाशा दृष्टि यातें धारण।
अंतरदृष्टि हमें बताती, आतम तत्त्व स्वरूप बताती ॥
प्रभु की मूरत जो हमने देखी,....
मोह राग-द्वेष हैं दुख कारण, सम्यक रत्नत्रय सुख कारन।
प्रभुजी ने सब दोष नशाये, हम भी भगवन बनने आये।
प्रभु की मूरत में हमने देखी, हमारी सूरत झलक रही है ॥
प्रभु की मूरत जो हमने देखी,....
गौर से आतम में हमने देखा, ज्ञान की ज्योति प्रगटी खड़ी है।
वीतरागी सर्वज्ञ जानकर, हितोपदेशी भला मानकर।
खुशालचंद जब अंतर झाँका, ज्ञानानंद झर झरी लगी है ॥
प्रभु की मूरत जो हमने देखी,....

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

सम्पादक मण्डल

बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

क्या - कहाँ

करणानुयोग	आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि	5
चरणानुयोग	शुद्धात्म-प्राप्ति की दुर्लभता	15
द्रव्यानुयोग	श्री समयसार नाटक	19
	स्वानुभूतिदर्शन :	24
	योगसार - प्रवचन	26
करणानुयोग	साधु तथा श्रावक	29
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	31
	समाचार-दर्शन	32

करणानुयोग

हमारे सन्त : हमारे गौरव

आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि

प्रस्तुत आलेख में षट्खण्डागम के रचनाकार दिगम्बर सन्त आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि का उपलब्ध परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। यह परिचय **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा** (डॉ. नेमिचन्द जैन) एवं **जैनधर्म का प्राचीन इतिहास-2** (पण्डित परमानन्द शास्त्री) के आधार पर संकलित है।

पुष्पदन्त और भूतबलि का नाम साथ-साथ प्राप्त होता है, किन्तु प्राकृत पट्टावली में पुष्पदन्त को भूतबलि से ज्येष्ठ माना गया है। आचार्य धरसेन के पश्चात् पुष्पदन्त का कार्यकाल 30 वर्ष का बताया गया है। पुष्पदन्त और भूतबलि दोनों ही धरसेनाचार्य के निकट श्रुत की शिक्षा प्राप्त करने गये थे। शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् सुन्दर दाँतों के कारण इनका नाम पुष्पदन्त पड़ा था।

धवला टीका में भी पुष्पदन्त के नाम का उल्लेख करते हुए लिखा है —

'अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थवियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दंतस्स 'पुप्फयंतो' त्ति णामं कयं।'

अर्थात् देवों ने पूजा करके जिनकी अस्त-व्यस्त दन्तपंक्ति को दूर कर सुन्दर बना दिया, उनकी धरसेन भट्टारक ने पुष्पदन्त संज्ञा की। स्पष्ट है कि पुष्पदन्त, यह आरम्भिक नाम नहीं है; गुरु ने यह नामकरण किया है। दक्षिणापथ से जिन दो साधुओं के आने का उल्लेख किया गया है, उनके आरम्भिक नामों का कथन नहीं आया है। यह सत्य है कि पुष्पदन्त भी भूतबलि के समान ही प्रतिभाशाली और ग्रन्थ-निर्माण में पटु हैं।

इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में लिखा है कि वर्षावास समाप्त कर पुष्पदन्त और भूतबलि दोनों ने ही दक्षिण की ओर विहार किया और दोनों करहाटक पहुँचे। वहाँ उनमें से पुष्पदन्त मुनि ने अपने भानजे जिनपालित से भेंट की और उसे दीक्षा देकर अपने साथ ले, वनवास देश को चले गये। तथा भूतबलि द्रविड देश की मदुरा नगरी में ठहर गये।

करहाटक को कुछ विद्वानों ने सितारा जिले का आधुनिक करहाड या कराड और कुछ ने महाराष्ट्र का कोल्हापुर नगर बतलाया है। करहाटक नगर प्राचीन समय में बहुत प्रसिद्ध था। स्वामी समन्तभद्र भी इस नगर में पधारे थे। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उस समय यह नगर विद्या और वीरता दोनों के लिए प्रसिद्ध था।

उपर्युक्त चर्चा से एक तथ्य यह प्रसूत होता है पुष्पदन्त के भानजे जिनपालित करहाटक के निवासी थे। अत: पुष्पदन्त का भी जन्मस्थान करहाटक के आसपास ही होना चाहिए।

धरसेनाचार्य ने महिमानगरी में सम्मिलित हुए दक्षिणापथ के आचार्यों के पास अपना पत्र भेजा था, जिसके फलस्वरूप आन्ध्रदेश की वेणा नदी के तट से पुष्पदन्त और भूतबलि उनके पास पहुँचे थे। वर्तमान में सतारा जिले में वेष्या नाम की नदी प्रवाहित होती है और उसी जिले में महिमागढ़ नामक ग्राम भी है। बहुत सम्भव है कि यह ग्राम ही प्राचीन महिमानगरी रही हो। अतएव सतारा जिले का करहाड ही करहाटक हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

वनवास देश उत्तर कर्णाटक का प्राचीन नाम है। यहाँ कदम्बवंश के राजाओं की राजधानी थी। उस वनवास देश में ही आचार्य पुष्पदन्त ने जिनपालित को पढ़ाने के लिए 'बीसदि' सूत्रों की रचना की और इन सूत्रों को भूतबलि के पास भेजा। भूतबलि ने उन सूत्रों का अवलोकन किया और यह जानकर कि पुष्पदन्त आचार्य की अल्पायु अवशिष्ट है, अत: महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का विच्छेद न हो जाए, इस भय से उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की। अतएव यह स्पष्ट है कि षट्खण्डागम-सिद्धान्त का प्रारम्भिक भाग वनवास देश में रचा गया और शेष ग्रन्थ द्रविड़ देश में।

समय-निर्धारण :

आचार्य वीरसेन ने मंगलाचरण-सन्दर्भ में भूतबलि से पूर्व पुष्पदन्त का स्तवन किया है। लिखा है -

पणमामि पुप्फयंतं दुण्णयंधयार-रविं।
भग्ग-सिव-मग-कंटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं॥

अर्थात् जो पापों का अन्त करनेवाले हैं, कुनयरूप अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्य तुल्य हैं, जिन्होंने मोक्षमार्ग के विघ्नों को नष्ट कर दिया है, जो ऋषियोंकी समिति, अर्थात् सभा के अधिपति हैं और जो निरन्तर पंचेन्द्रियों का दमन करनेवाले हैं — ऐसे पुष्पदन्त आचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

उपर्युक्त उद्धरण में 'इसि-समिइ-वइं' विचारणीय है। इस पद का अर्थ यह है कि पुष्पदन्त अपने समय के आचार्यों में अत्यन्त मान्य थे और इसीलिए वे मुनिसमिति के सभापति कहलाते थे।

नदिसंघ की प्राकृत-पट्टावली के अनुसार पुष्पदन्त, भूतबलि से पूर्ववर्ती हैं। इसके अनुसार इनका समय वीर नि.सं. 633 के पश्चात् ई. सन् प्रथम-द्वितीय शताब्दी के लगभग होना चाहिए। डा. ज्योतिप्रसाद जैन ने पुष्पदन्त का समय ई. सन् 50-80 माना है।

रचनाशक्ति और प्रतिभा :

धवला में आचार्य वीरसेन ने बतलाया है कि बीस प्रकार की प्ररूपणाएँ सूत्रों के द्वारा की गयी हैं। अत: पुष्पदन्ताचार्य ने जो 'बीसदिसुत्तं' कहा है, उसका अभिप्राय सत्प्ररूपणा के सूत्रों में आगमोक्त बीस प्ररूपणाओं के कथन से है। धवलाकार ने सत्प्ररूपणा के सूत्रों की व्याख्या समाप्त करने के पश्चात् लिखा है कि सत्सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने के अनन्तर उनकी प्ररूपणा करेंगे। इससे स्पष्ट है कि आचार्य पुष्पदन्त ने सत्सूत्रों की ही रचना की है; उसकी प्ररूपणा का कथन नहीं किया। यद्यपि उन्होंने अनुयोगद्वार का नाम 'संतपरूवणा' ही रखा है। ऐसी स्थिति में पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा रचे गये सूत्रों को 'संतसुत्त' कहना अधिक उचित था; पर इस शब्द का प्रयोग न कर 'बीसदिसुत्त' क्यों कहा? - इस सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक समाधान प्राप्त नहीं होता है।

इन्द्रनन्दि ने लिखा है कि पुष्पदन्त ने सौ सूत्रों को पढ़ाकर जिनपालित को भूतबलि के पास भेजा, किन्तु सत्प्ररूपणा के सूत्रों की संख्या 177 है। अत: उनका यह कथन भी सतर्क प्रतीत नहीं होता। यह सत्य है कि सत्प्ररूपणा के 177 सूत्र पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचे गये हैं; अत: उत्थानिका में धवलाकार ने पुष्पदन्त का ही नामोल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ की रूपरेखा का निर्माण पुष्पदन्त के द्वारा ही हुआ होगा; अत: ग्रन्थ-निर्माण का आरम्भ पुष्पदन्त ने किया है। इन्होंने चौदह जीवसमासों और गुणस्थानों के निरूपण के लिए आठ अनुयोगद्वारों को ही जानने योग्य बतलाया है। ये आठ अनुयोगद्वार हैं-1. सन्तपरूवणा, 2. द्रव्यप्रमाणानुगम, 3. क्षेत्रानुगम, 4. स्पर्शानुगम, 5. कालानुगम, 6. अन्तरानुगम, 7. भावानुगम, और 8. अल्पबहुत्वानुगम। जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड के ही ये आठ अधिकार हैं। इन अधिकारों के अनन्तर जीवस्थान की चूलिका है। इस चूलिका को भी जीवस्थान का भाग सिद्ध करने के लिए धवलाकार को शंका-समाधान करना पड़ा है और अन्त में उन्होंने बताया है कि चूलिका का अन्तर्भाव आठ अनुयोग-द्वारों में होता है; अत: चूलिका जीवस्थान से भिन्न नहीं है। धवलाकार की इस चर्चा से यह स्पष्ट है कि पुष्पदन्त आचार्य द्वारा आठ अनुयोगद्वारों में जो बातें कथन करने से छूट गयी थीं, उनसे सम्बद्ध बातों का कथन चूलिका अधिकार में किया गया। धवला के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि चूलिका अधिकार पुष्पदन्त द्वारा रचित नहीं है। पुष्पदन्त ने केवल जीवस्थान नामक खण्ड का ही उक्त सूत्रों में ग्रन्थन किया है।

इन्द्रनन्दि ने लिखा है - पुष्पदन्त मुनि ने अपने भानजे जिनपालित को पढ़ाने के लिए कर्मप्रकृतिप्राभृत का छह खण्डों में उपसंहार किया है और जीवस्थान के प्रथम अधिकार की रचना की और उसे जिनपालित को पढ़ाकर भूतबलि का अभिप्राय अवगत करने के लिए उनके पास भेजा। जिनपालित से सत्प्ररूपणा के सूत्रों को सुनकर भूतबलि ने आचार्य धरसेन, पुष्पदन्त गुरु का षट्खण्डागम-रचना का अभिप्राय जाना।

जीवस्थान के अवतार का कथन करते हुए धवलाटीकाकार आचार्य वीरसेन ने जो विमर्श प्रस्तुत किया है, उससे आचार्य पुष्पदन्त की रचनाशक्ति, पाण्डित्य एवं प्रतिभा पर पूरा प्रकाश पड़ता है। लिखा है - दूसरे आग्रायणीय पूर्व के अन्तर्गत चौदह वस्तु-अधिकारों में एक चयन लब्धि नामक पाँचवाँ वस्तु-अधिकार है। उसमें बीस प्राभृत हैं। उनमें से चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृति है। उस कर्मप्राभृतप्रकृति के 24 अर्थाधिकार हैं। उनमें छठा अधिकार बन्धन नामक है।

इस अधिकार के भी चार भेद हैं –

1. बन्ध, 2. बन्धक, 3. बन्धनीय और 4. बन्धविधान। इनमें से बन्धक अधिकार के ग्यारह अनुयोगद्वार हैं। उनमें पंचम अनुयोगद्वार द्रव्यप्रमाणानुगम है। इस जीवस्थान नामक खण्ड में जो द्रव्यप्रमाणानुगम नामक अधिकार है, वह इसी बन्धक नामक अधिकार से निस्सृत है। बन्धविधान के भी चार भेद हैं – प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इन चारों बन्धों में से प्रकृतिबन्ध के दो भेद हैं – मूलप्रकृतिबन्ध और उत्तरप्रकृतिबन्ध। उत्तरबन्ध के दो भेद हैं – एकैकोत्तर प्रकृतिबन्ध और अव्वोगाढोत्तरप्रकृतिबन्ध। एकैकोत्तर-प्रकृतिबन्ध के 24 अनुयोगद्वार हैं। उनमें से जो समुत्कीर्तन नामक अधिकार है, उसमें से प्रकृतिसमुत्कीर्त, स्थान-समुत्कीर्तन और तीन महादंडक निस्सृत हैं। तेईसवें भावानुगम से भावानुगम निकला है। अव्वीगाढ़ उत्तरप्रकृतिबन्ध के दो भेद हैं – भुजगारबन्ध और प्रकृतिस्थानबन्ध। प्रकृतिस्थानबन्ध के आठ अनुयोगद्वार हैं – सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम। इन आठ अनुयोगद्वारों में से छह अनुयोग-द्वार निकले हैं – सत्प्ररूपणा, क्षेत्रप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा और अल्पबहुत्वप्ररूपणा। ये छह और बन्धक अधिकार के ग्यारह अधिकारों में से निस्सृत द्रव्यप्रमाणानुगम तथा तेईसवें अधिकार से निस्सृत भावानुगम ये सब मिलकर जीवस्थान के आठ अनुयोगद्वार हैं। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि आचार्य पुष्पदन्त ने 'एत्तो' इत्यादि सूत्र उक्त गाथा को ग्रहण कर ही कहा है।

उक्त समस्त विमर्श के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपस्थित होते हैं–

1. षट्खण्डागम का आरम्भ आचार्य पुष्पदन्त ने किया है।

2. सत्प्ररूपणा के सूत्रों के साथ उन्होंने षट्खण्डागम की कोई रूपरेखा भी भूतबलि के निकट पहुँचायी होगी।

3. पुष्पदन्त ने अपनी रचना जिनपालित को पढ़ायी और तदनन्तर अपने को अल्पायु समझकर गुरुभाई भूतबलि को अवशिष्ट कार्य को पूर्ण करने के लिये प्रेरित किया होगा।

4. पुष्पदन्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के अच्छे ज्ञाता एवं उसके व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। यद्यपि सूत्रों के रचयिताओं का नाम नहीं मिलता है परन्तु धवलाटीका के आधार पर सत्प्ररूपणा के सूत्रों के रचयिता पुष्पदन्त हैं।

5. पुष्पदन्त ने अनुयोगद्वार और प्ररूपणाओं के विस्तार को अनुभव कर ही सूत्रों की रचना प्रारम्भ की होगी।

भूतबलि और उनकी रचना :

पुष्पदन्त के नाम के साथ भूतबलि का भी नाम आता है। दोनों ने एक साथ धरसेनाचार्य से सिद्धान्त-विषय का अध्ययन किया था। भूतबलि ने अंकलेश्वर में चातुर्मास समाप्त कर द्रविड़ देश में जाकर श्रुत का निर्माण किया। धवलाटीका में आचार्य वीरसेन ने आ. पुष्पदन्त के पश्चात् आ. भूतबलि को नमस्कार किया है।

पणमह कय-भूय-बलिं भूयबलिं केस-वास-परिभूय-बलिं।
विणिहय-वम्मह-पसरं-वड्ढाविय-विमल-णाण-बम्मह-पसरं।

अर्थात् जो भूत / प्राणीमात्र के द्वारा पूजे गये हैं अथवा भूत नामक व्यन्तर जाति के देवों द्वारा पूजित हैं; जिन्होंने अपने केशपाश, अर्थात् सुन्दर बालों से बलि-जरा आदि से उत्पन्न होनेवाली शिथिलता को परिभूत-तिरस्कृत कर दिया है। जिन्होंने कामदेव के प्रसार को नष्ट कर दिया है और निर्मल ज्ञान के द्वारा ब्रह्मचर्य को वृद्धिंगत कर लिया है, उन भूतबलि नामक आचार्य को प्रणाम करो।

उपर्युक्त गाथा में भूतबलि के शारीरिक और आत्मिक तेज का वर्णन किया है। भूतबलि की आन्तरिक ऊर्जा इतनी बढ़ी हुई थी, जिससे ब्रह्मचर्यजन्य सभी उपलब्धियाँ उन्हें हस्तगत हो गयी थीं। ऋद्धि और तपस्या के कारण प्राणीमात्र उनकी पूजा प्रतिष्ठा करता था। इस प्रकार आचार्य वीरसेन ने आचार्य भूतबलि के व्यक्तित्व की एक स्पष्ट रेखा अंकित की है। सौम्य आकृति के साथ भूतबलि के केश अत्यन्त संयत और सुन्दर थे। केशों की कृष्णता और स्निग्धता के कारण वे युवा ही प्रतीत होते थे।

श्रवणबेलगोला के एक शिलालेख में पुष्पदन्त के साथ भूतबलि को भी अर्हद्बलि का शिष्य कहा है। इस कथन से ऐसा ज्ञात होता है कि भूतबलि के

दीक्षागुरु अर्हद्बलि और शिक्षागुरु धरसेनाचार्य रहे होंगे। लिखा है –

यः पुष्पदन्तेन च भूतबल्याख्येनापि शिष्य-द्वितयेन रेजे।
फलप्रदानाय जगज्जनानां प्राप्तोऽङ्कुराभ्यामिव कल्पभूजः॥
अर्हद्बलिस्सङ्घचतुर्विधं स श्रीकोण्डकुन्दान्वयमूलसङ्घं।
कालस्वभावादिह जायमानद्वेषेतराल्पीकरणाय चक्रे॥

इन अभिलेखीय पद्यों के आधार पर अर्हद्बलि को भूतबलि का गुरु मान लिया जाए तो कोई हानि नहीं है। समयक्रमानुसार अर्हद्बलि और पुष्पदन्त के समय में 21+19=40 वर्ष का अन्तर पड़ता है, जिससे अर्हद्बलि का भूतबलि और पुष्पदन्त के समसामायिक होने में कोई बाधा नहीं है।

भूतबलि के व्यक्तित्व और ज्ञान के सम्बन्ध में धवलाटीका से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। बताया है – भूतबलि भट्टारक असंबद्ध बात नहीं कह सकते। यतः महाकर्मप्रकृति प्राभृत रूपी अमृतपान से उनका समस्त राग-द्वेष-मोह दूर हो गया है।

'ण चासंबद्धं भूदबलिभडारओ परूवेदि महाकम्मपयडिपाहुड-अमियवाणेण ओसारिदा सेसरागदोसमोहत्तादो।'

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि भूतबलि महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के पूर्ण ज्ञाता थे। इसलिए उनके द्वारा रचित सिद्धान्तग्रन्थ सर्वथा निर्दोष और अर्थपूर्ण हैं। इन्होंने 24 अनुयोगद्वारस्वरूप महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का ज्ञान प्राप्त किया था। बताया है कि –

चउबीसअणियोगद्दारसरूवमहाकम्मपयडिपाहुडपारयस्स भूदवलि-भयवंतस्स।

समय-निर्धारण :

भूतबलि का समय आचार्य पुष्पदन्त का समय ही है। दोनों ने एक साथ धरसेनाचार्य से सिद्धान्त-ग्रन्थों का अध्ययन किया और अंकलेश्वर में साथ-साथ वर्षावास किया। पुष्पदन्त द्वारा रचित प्राप्त सूत्रों के पश्चात् भूतबलि के षट्खण्डागम के शेष भाग की रचना की। डॉ. ज्योतिप्रसाद ने भूतबलि का समय ई. सन् 66-90 तक माना है और षट्खण्डागम का संकलन ई. सन् 75 स्वीकार

किया है। प्राकृतपट्टावली, नन्दिसंघ की गुर्वावली आदि प्रमाणों के अनुसार भूतबलि का समय ई. सन् की प्रथम शताब्दी का अन्त और द्वितीय शताब्दी का आरम्भ आता है। डा. हीरालाल जैन ने धवला की प्रस्तावना में वीर नि.सं. 614 और 683 के बीच उक्त आचार्यों का काल निर्धारित किया है। अतएव भूतबलि का समय ई. सन् प्रथम शताब्दी का अन्तिम चरण (ई. 87 के लगभग) अवगत होता है।

रचना-शक्ति और पाण्डित्य :

इन्द्रनन्दिके श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि भूतबलि ने पुष्पदन्त विरचित सूत्रों को मिलाकर पाँच खण्डों के छह हजार सूत्र रचे और तत्पश्चात् महाबन्ध नामक छठे खण्ड की तीस हजार सूत्रग्रन्थरूप रचना की।

षट्खण्डागम के सूत्रों के अवलोकन से प्रगट होता है कि प्रथम खण्ड जीवस्थान के आदि में सत्प्ररूपणासूत्रों के रचयिता पुष्पदन्ताचार्य ने मंगलाचरण किया है और तद्नुसार धवलाटीकाकार वीरसेनस्वामी ने भी श्रुतावतार आदि का कथन किया है। षट्खण्डागम के रचयिता भूतबलि ने चौथे खण्ड वेदना के आदि में पुन: मंगल किया है और धवलाकार ने भी जीवस्थान के समान ही कर्ता, निमित्त, श्रुतावतार आदि की पुन:चर्चा की है। इससे यह षट् खण्डागम ग्रन्थ दो भागों में विभक्त प्रतीत होता है। पहले भाग में आदि के तीन खण्ड हैं और द्वितीय भाग में अन्त के तीन खण्ड हैं। इस द्वितीय भाग में ही महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के 24 अधिकारों का वर्णन किया गया है। डॉ. हीरालाल जैन ने इस द्वितीय खण्ड की विशेष संज्ञा सत्कर्मप्राभृत बतायी है। वस्तुत: आचार्य भूतबलि ने षट्खण्डागम के जीवस्थान को छोड़कर शेष समस्त खण्डों की रचना की है। कृतिअनुयोगद्वार के आदि ग्रन्थावतार का वर्णन करते हुए वीरसेनस्वामी ने लिखा है कि धरसेनाचार्य ने गिरिनगर की चन्द्रगुफा में भूतबलि और पुष्पदन्त को समग्र महाकर्मप्रकृतिप्राभृत समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् भूतबलि भट्टारक ने श्रुत-नदी के प्रवाह के विच्छेद के भय से भव्य जीवों के उद्धार के लिये महाकर्म-प्रकृतिप्राभृत का उपसंहार करके छह खण्ड किये।

इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार में यह लिखा है कि भूतबलि आचार्य ने

षट्खण्डागम की रचना कर उसे ग्रन्थरूप में निबद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी को उसकी पूजा की और इसी कारण यह पञ्चमी **श्रुत पञ्चमी** के नाम से विख्यात हुई। तत्पश्चात् भूतबलि ने उस षट्खण्डागमसूत्र के साथ जिनपालित को पुष्पदन्त गुरु के पास भेजा। जिनपालित के हाथ में षट्खण्डागम ग्रन्थ को देखकर 'मेरे द्वारा चिन्तित कार्य सम्पन्न हुआ', यह अवगत कर पुष्पदन्त गुरु ने भी श्रुतभक्ति के अनुराग से पुलकित होकर श्रुत पंचमी के दिन उक्त ग्रन्थ की पूजा की।

श्रुतावतार के उक्त कथन से यही प्रमाणित होता है कि पुष्पदन्ताचार्य ने षट्खण्डागम की रूपरेखा निर्धारित कर सत्प्ररूपणा के सूत्रों की रचना की थी और शेष भाग को भूतबलि ने समाप्त किया था।

षट्खण्डागम के अवलोकन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दूसरे खण्ड खुद्दा-बन्ध से छठे खण्ड तक यह भूतबलि द्वारा रचा गया है। चतुर्थ खण्ड वेदना के अन्तर्गत कृतिअनुयोगद्वार के आदि में सूत्रकार ने 44 मंगल सूत्र लिखे हैं और 45वें सूत्र से ग्रन्थ की उत्थानिका के रूप आग्रायणीय पूर्व के पञ्चम वस्तु अधिकार के अन्तर्गत कर्मप्रकृतिप्राभृत के 24 अनुयोगद्वारों का निर्देश किया है। वीरसेनस्वामी ने इन मंगलसूत्रों को लेकर एक लम्बी चर्चा की है। इस चर्चा से तीन निष्कर्ष निकलते हैं -

1. भूतबलि ने मंगलसूत्रों की रचना स्वयं नहीं की। परम्परा से प्राप्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के मंगलसूत्रों का संकलन किया है।

2. षट्खण्डागम में महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के अर्थ का ही निबन्धन नहीं किया है; अपितु शब्द भी ग्रहण किये गये हैं।

3. भूतबलि कर्ता नहीं, प्ररूपक हैं; अत: षट्खण्डागम का द्वादशांग वाणी के साथ साक्षात् सम्बन्ध है।

इस तरह स्पष्ट है कि आचार्य भूतबलि महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के ज्ञानी एवं मर्मज्ञ विद्वान् थे।

आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि कौन थे ? - इस सम्बन्ध में जैन साहित्य का प्राचीन इतिहास भाग-2 में इस प्रकार कहा गया है -

'जैन अनुश्रुति में नहवाण, नहपान और नरवाहन आदि नाम मिलते हैं। नहपान वमिदेश में स्थित वसुन्धरा नगरी का क्षहरात वंश का प्रसिद्ध शासक था। इसकी रानी का नाम सरूपा था। नहपान अपने समय का एक वीर और पराक्रमी शासक था और वह धर्मनिष्ठ तथा प्रजा का संपालक था। नहपान के अपने तथा जामाता उषभदत्त या ऋषभदत्त और मन्त्री अयम के अनेक शिलालेख मिलते हैं, जो वर्ष 41 से 46 तक के हैं। नहपान के राज्य पर ईस्वी सन् 61 के लगभग गौतमी पुत्र शातकर्णी ने भृगुकच्छ पर आक्रमण किया था। घोर युद्ध के बाद नहपान पराजित हो गया और युद्ध में उसका सर्वस्व विनष्ट हो गया। उसने सन्धि कर ली। सातवाहन ने इस विजय के उपलक्ष्य में नहपान के सिक्कों को प्राप्त कर और उन पर अपने नाम की मुहर अंकित कर राज्य में चालू किया। वह उस समय वहाँ आया हुआ था। उसमें नहपान ने अपने मित्र मगध नरेश को मुनिरूप में देखकर और उनके उपदेश से प्रेरित हो अपने जमाता ऋषभदत्त को राज्यभार सौंप कर अपने राज्य श्रेष्ठि सुबुद्धि के साथ मुनि दीक्षा ले ली। इन दोनों साधुओं ने संघ में रहकर तपश्चरण तथा आवश्यकादि क्रियाओं के अतिरिक्त ध्यान अध्ययन द्वारा ज्ञान का अच्छा अर्जन किया। यह अत्यन्त विनयी विद्वान और ग्रहण धारण में समर्थ थे। इन दोनों साधुओं को आचार्य धरसेन के पास गिरि नगर भेजा गया था। आचार्य धरसेन ने इनकी परीक्षा कर महाकर्मप्रकृति प्राभृत पढ़ाया था। इनमें एक का नाम भूतबलि और दूसरे का नाम पुष्पदन्त रखा गया था। उनका दीक्षा नाम क्या था, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

नरवाहन या नहपान राजा भूतबलि हुआ और राजश्रेष्ठि सुबुद्धि पुष्पदन्त के नाम से विख्यात हुआ। बिबुध श्रीधर के श्रुतावतार में इनका उल्लेख है और नरवाहन को भूतबलि और सुबुद्धि सेठ को पुष्पदन्त बतलाया गया है।'

अन्त में प्रथम श्रुतस्कन्ध के रचनाकार परम पूज्य आचार्यश्री पुष्पदन्त एवं भूतबलि के चरणों में सादर सविनय नमोऽस्तु समर्पित करते हुए एवं ग्रन्थराज षट्खण्डागम के प्रति विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए समस्त साधर्मीजनों से इस ग्रन्थ के अध्ययन का अनुरोध करते हैं।●

चरणानुयोग

परम उपकारी जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आत्महित की प्रेरणादायक विशिष्ट प्रवचनांश

शुद्धात्म-प्राप्ति की दुर्लभता

अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को शुद्ध आत्मा की समझ दुर्लभ है, यह बताते हुए श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव समयसार की चौथी गाथा में कहते हैं कि —

(1) काम-भोग-बन्धन की कथा को समस्त जीवों को सुनने में आ गयी है परन्तु....,

(2) भिन्न आत्मा के एकत्व की बात जीव ने कभी सुनी ही नहीं है।

देखो! इस कथन से निम्न न्याय निकलते हैं :-

(1) निगोद में ऐसे अनन्त जीव हैं कि जिन्होंने कभी मनुष्यभव धारण ही नहीं किया है, जो कभी निगोद में से निकले ही नहीं हैं; जिन्हें कभी श्रवणेन्द्रिय प्राप्त ही नहीं हुई है, तो उन्होंने काम-भोग-बन्ध की कथा किस प्रकार सुनी ?

समाधान यह है कि उन जीवों ने शब्द भले ही नहीं सुने हों परन्तु काम-भोग की कथा के श्रवण का जो कार्य है, उसे तो वे कर ही रहे हैं। शब्द न सुनने पर भी उसके भाव अनुसार विपरीत प्रवर्तन तो वे कर ही रहे हैं। काम-भोग की कथा सुननेवाले अज्ञानी जीव जिस विकार का अनुभव कर रहे हैं और कह रहे हैं, वैसा वे निगोद के जीव, कथा सुने बिना ही कर रहे हैं; इसलिए उन्होंने भी काम-भोग-बन्धन की कथा सुनी है - ऐसा आचार्यदेव ने कहा है।

एक तो शुद्धात्मा के भान बिना अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक के भव करनेवाला जीव और दूसरा नित्य निगोद का जीव है - यह दोनों एक ही जाति के हैं, दोनों अशुद्ध आत्मा का ही अनुभव कर रहे हैं। निगोद के जीव को श्रवण का निमित्त प्राप्त नहीं हुआ और नौवें ग्रैवेयक जानेवाले जीव को निमित्त प्राप्त होने पर भी उसका उपादान नहीं सुधरा; इसलिए उसने शुद्धात्मा की बात सुनी - ऐसा यहाँ अध्यात्मशास्त्र में नहीं गिना जाता। काम-भोग की कथा तो निमित्तमात्र है, उसे

सुनने का फल क्या है ? विकार का अनुभव। उस विकार का अनुभव तो निगोद का जीव कर ही रहा है; इसलिए उस जीव ने काम-भोग की कथा सुनी है।

2. अज्ञानी जीव ने अनन्त बार तीर्थङ्कर भगवान के समवसरण में जाकर उनकी दिव्यध्वनि में शुद्धात्मा की बात सुनी है, फिर भी आचार्य भगवान कहते हैं कि आत्मा के शुद्धस्वभाव की वार्ता उन जीवों ने कभी नहीं सुनी है, क्योंकि अन्तर की रुचि से उसका परिणमन नहीं किया है; शुद्धात्मा का अनुभव नहीं किया है, इसलिए वस्तुत: उसने शुद्धात्मा की बात सुनी ही नहीं है।

शुद्धात्मा का श्रवण किया तो तब कहलाता है कि जब उसका आशय समझकर तदनुसार परिणमित हो अर्थात् भावपूर्वक के श्रवण को भी यहाँ सुनने में गिना गया है। निमित्त के साथ उपादान का मेल होने पर ही उसे निमित्त कहते हैं। अनादि से काम-भोग- बन्धन की कथा के निमित्त के साथ जीव के उपादान का मेल हुआ है परन्तु शुद्ध ज्ञायक एकत्व-विभक्त आत्मस्वरूप को बतलानेवाले निमित्त के साथ उसके उपादान का मेल नहीं हुआ है; इसलिए उसने शुद्ध आत्मा की बात सुनी ही नहीं है। यहाँ तो उपादान-निमित्त की सन्धिपूर्वक कथन है। निमित्तरूप से ऐसे अपूर्व श्रवण को स्वीकार किया है कि जिसका श्रवण किया, उसकी रुचि और अनुभव भी करे ही।

कोई जीव भले ही भगवान की सभा में दिव्यध्वनि सुनता हो परन्तु यदि अन्तर में व्यवहार के पक्ष का आशय रखे तो उसने वास्तव में शुद्धात्मा का ग्रहण नहीं किया है, उसके लिये तो वह विकथा का ही श्रवण है। मात्र आत्मा के शब्द कान में पड़ना, वह कहीं शुद्धात्मा का श्रवण नहीं है परन्तु श्रवण, परिचय और अनुभव - इन तीनों की एकता अर्थात् जैसा शुद्धात्मा सुना है, वैसा ही परिचय में-रुचि में लेकर उसका अनुभव करे, इसी का नाम शुद्धात्मा का श्रवण है। जीव ने पूर्व में ऐसा श्रवण कभी नहीं किया है; इसलिए अब तू शुद्धात्मा की रुचि के अपूर्वभाव से इस समयसार का श्रवण करना - ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

धर्मकथा अथवा विकथा, मात्र शब्दों में नहीं है, अपितु भाव पर उसका आधार है। जहाँ युद्ध अथवा शरीर के रूप इत्यादि का वर्णन आवे, वहाँ उसे सुननेवाला यदि अपने में वैराग्यभाव का पोषण करता हो तो उसके लिए वह

वैराग्यकथा है और उन्हीं शब्दों को सुनकर जो जीव अपने विषय-कषाय के भावों का पोषण करता हो, उसके लिए वह विकथा है। इसी प्रकार यहाँ जो जीव, शुद्धात्मा की रुचि करे, उसी ने शुद्धात्मा की बात सुनी - ऐसा कहा जाता है। शुद्धात्मा के शब्द कान में पड़ने पर भी यदि विकार की रुचि का परित्याग नहीं करे तो उसने शुद्धात्मा की बात सुनी ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि निमित्त पर कुछ भी वजन नहीं रहा, अपितु अपने उपादान में रुचि के भाव पर ही वजन आया।

जैसे, कोई पिता अपने पुत्र से कहे कि जा, बाजार से शक्कर ले आ! यदि उसका पुत्र, शक्कर के बदले अफीम ले आवे तो उसने अपने पिता की बात सुनी नहीं कहा जाता। इसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान और सन्त, शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाकर, उसका अनुभव करने के लिये कहते हैं। जो जीव, शुद्धात्मा का तो अनुभव नहीं करता और विकार की रुचि करके उसका ही अनुभव करता है तो उस जीव ने वास्तव में शुद्धात्मा की बात सुनी ही नहीं है।

भगवान की दिव्यध्वनि में तो एक साथ निश्चय-व्यवहार इत्यादि सब वर्णन आता है। उसे सुनते ही 'व्यवहार है न! राग है न! निमित्त है न!' इस प्रकार जो जीव, व्यवहार पर वजन देता है किन्तु 'आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञायक है' - इस प्रकार शुद्धात्मा के अस्तित्व पर वजन नहीं देता अर्थात् अपनी रुचि को शुद्धात्मा की ओर नहीं लगाता, उस जीव ने भगवान की वाणी नहीं सुनी, क्योंकि भगवान की वाणी सुनने से पूर्व उसका जो भाव था, वैसे ही भाव का भगवान की वाणी सुनने के बाद भी वह सेवन कर रहा है।

जितने जीव, शुद्ध आत्मा की रुचि की ओर नहीं ढलकर, अशुद्ध आत्मा की अर्थात् व्यवहार की, राग की, निमित्त की, पराश्रय की रुचि करते हैं, उन सभी जीवों ने काम-भोग-बन्धन की कथा ही सुनी है किन्तु शुद्धात्मा की बात नहीं सुनी है। जैसा कार्य ये जीव कर रहे हैं, वैसा ही कार्य नित्य-निगोद के जीव भी कर ही रहे हैं। अनादि से वाणी नहीं सुनी थी, तब जो दशा थी, उसमें वाणी सुनने के बाद कुछ अन्तर नहीं पड़ा और वैसी ही दशा रही तो उसने आत्मस्वभाव की बात सुनी है - ऐसा ज्ञानी स्वीकार नहीं करते हैं।

यदि एक बार भी आत्मा के शुद्धस्वभाव की बात प्रीतिपूर्वक सुनें तो अल्प काल में ही उसकी मुक्ति हुए बिना नहीं रहे।

जीव ने कभी सच्चे निमित्त के समक्ष अपने एकत्वस्वभाव का श्रवण ही नहीं किया है, सच्चे लक्ष्यपूर्वक उसका परिचय नहीं किया है और विकल्प तोड़कर अनुभव नहीं किया है। यहाँ तो ऐसे ही श्रवण को 'श्रवण' के रूप में लिया गया है कि जिस श्रवण के फल में यथार्थ आत्मस्वरूप का परिचय और अनुभव हो; परिचय और अनुभव बिना श्रवण, वह वास्तविक श्रवण नहीं है।

समयसार सुननेवाला शिष्य भी ऐसा सुपात्र है कि समयसार में बतलाये गये आत्मा का एकत्वस्वरूप सुनने में उसे उत्साह आता है और उसमें अपूर्वता भासित होती है। वर्तमान में जिस भाव से मैं श्रवण करता हूँ – ऐसे भाव से मैंने पूर्व में कभी सुना ही नहीं। इस प्रकार वह अपने भाव में अपूर्वता लाकर सुनता है; इसलिए निमित्त में भी अपूर्वता का आरोप आता है। पूर्व में शुद्धात्मा का श्रवण-परिचय और अनुभव नहीं किया था परन्तु अब अपूर्व रुचि प्रगट करके आत्मा का श्रवण-मन्थन और स्वानुभव करने के लिए वह शिष्य तैयार हुआ है।

यहाँ आचार्यदेव पूर्व के श्रवण को निमित्तरूप स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि उस समय जीव के भाव में नैमित्तिकभाव नहीं था; नैमित्तिकभाव प्रगट हुए बिना निमित्त किसका? 'शुद्धात्मा की बात पहले कभी नहीं सुनी' – ऐसा कहकर श्री आचार्यदेव एकत्वस्वभाव के श्रवण को अपूर्वरूप स्वीकार करते हैं। निमित्त की अपूर्वता है, वह यह प्रसिद्ध करती है कि यहाँ नैमित्तिकभाव में भी अपूर्वता का प्रारम्भ प्रगट हुआ है। यदि उपादान में अपूर्वता प्रारम्भ नहीं हुई हो तो निमित्त की अपूर्वता को स्वीकार कौन करेगा? निमित्त-नैमित्तिक के मेलपूर्वक एकत्वस्वभाव का श्रवण जीव ने पूर्व में कभी नहीं किया है। निमित्त-नैमित्तिकभाव के मेलवाला श्रवण अपूर्व है, उसमें जीव का नैमित्तिकभाव भी अपूर्व है और उस अपूर्वभाव का निमित्त होने से वह निमित्त भी अपूर्व है। ●

[सम्यग्दर्शन, (भाग-2) समयसार, गाथा 4 के प्रवचन से, पृष्ठ 85-89]

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ताकर्म क्रिया द्वार प्रवचन

अनुभव के सिवाय कहीं मुक्ति नहीं है। अर्थात् अनुभव के अलावा कहीं धर्म नहीं है। (साधकदशा में) भूमिकानुसार व्रत, तप, यात्रा, भक्ति आदि के भाव आते हैं वह तो पुण्य के विकल्प हैं। 'अनुभौ बिना न कहूँ और ठौर मोख है:- 'देखो! अनुभव ही मोक्ष का कारण है- ऐसा कहा, तो क्या इसमें एकान्तवाद नहीं हुआ? नहीं। अनुभव ही मोक्ष का कारण है, व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं हैं- ऐसा अनेकान्त इसमे विद्यमान है। व्यवहार को भी मोक्ष का कारण माने वह तो फुदड़ीवाद है। जहाँ तक वीतरागता पूर्ण नहीं होती वहाँ तक व्रत, तप, जपादिक का शुभभाव आता तो है ही, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द 2000 वर्ष पूर्व हो गये हैं। उन्होंने 'समयसार' की रचना की हैं। उस पर 900 वर्ष पूर्व हो गये आचार्य अमृतचन्द ने टीका लिखी है और कलशों की रचना की है। उन कलशों पर पंडित राजमलजी ने 'कलशटीका' लिखी है, जिसके आधार से पंडित बनारसीदासजी ने इस पद्यमय नाटक समयसार की रचना की है। अत: मूल में तो यह आत्मज्ञानी, जंगल में बसने वाले निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों द्वारा रचित शास्त्र है। उसमें यह 30 वां पद पूर्ण हुआ।

बनारसीदासजी युवा अवस्था में तो श्रृंगाररसी थे और श्रृंगाररस पर ग्रन्थ भी लिखते थे। तत्पश्चात् रूपचंदजी आदि साधर्मीजनों का संग प्राप्त होने से स्वयं आत्मज्ञानी हुए तो उस श्रृंगाररस के ग्रंथ को गोमती नदी में बहा दिया। तत्पश्चात् यह भव्य-नाटक समयसार बनाया।

अब 31 वें पद में दृष्टान्त देकर यह समझाते हैं कि अनुभव के अभाव में संसार और सद्भाव में मोक्ष है।

अनुभव के अभाव में संसार और सद्भाव में मोक्ष है, इस पर दृष्टान्त

जैसे एक जल नानारूप-दरबानुजोग,
भयौ बहु भांति पहिचान्यौ न परतु है।
फिरि काल पाइ दरबानुजोग दूरि होत,
अपनै सहज नीचे मारग ढरतु है॥

तैसैं यह चेतन पदारथ विभाव तासौं,
गति जोनि भेस भव-भांवरि भरतु है।
सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ,
बंध की जुगति भानि मुकति करतु है॥31॥

अर्थः- जिस प्रकार जल का एक वर्ण है, परन्तु गेरु, राख, रंग आदि अनेक वस्तुओं का संयोग होने पर अनेक रूप हो जाने से पहचान में नहीं आता, फिर संयोग दूर होने पर स्वभाव में बहने लगता है, उसी प्रकार यह चैतन्यपदार्थ विभाव-अवस्था में गति, योनि, कुलरूप संसार में चक्कर लगाया करता है, पीछे अवसर मिलने पर निजस्वभाव को पाकर अनुभव के मार्ग में लगकर कर्म-बन्धन को नष्ट करता है और मुक्ति को प्राप्त होता है ॥31॥

काव्य - 31 पर प्रवचन

ऐसा नहीं समझना कि मैं बालक हूँ अथवा वृद्ध हूँ, इसलिये मुझे समझ में नहीं आता। आत्मा कोई बालक, युवा अथवा वद्ध नहीं है। मेरी बुद्धि अल्प है इसलिये मुझे समझ में नहीं आता-ऐसा भी नहीं मानना चाहिये। तुम्हारी बुद्धि अल्प नहीं हैं, तुम तो केवलज्ञान के कंद हो। अन्दर में आत्मा की रुचि और दृष्टि का विषय ख्याल में आना चाहिये बस, इतनी बात है। ज्ञान अल्प होने से कोई बाधा नहीं है।

जिसप्रकार पानी अन्य रंग आदि संयोग होने पर अनेक रूप हो जाता है अथवा अनेक वृक्षों में जाने पर पानी का अनेकरूप स्वाद आता है। इस कारण पानी का मूल रंग अथवा स्वाद पहिचानने में नहीं आता। जैसे कि नीम में गया हुआ पानी कड़वा लगता है, द्राक्ष में गया हुआ पानी मीठा लगता है; उसी प्रकार यह चैतन्य पदार्थ विभाव अवस्था में अनेक गति, योनि कुलरूप संसार में चक्कर लगाया करता है। इस कारण शुद्ध जीव का स्वरूप पहिचाननें में नहीं आता।

जिसप्रकार नदी के पानी का प्रवाह चला जा रहा हो उसके खेत में जाने पर मिट्टी के साथ मिल जाने से रंग बदल जाता है; परन्तु उसी पानी का प्रवाह आगे जाकर पुनः नदी में मिलता है तब मिट्टी आदि का संयोग दूर होने से वापस अपने निर्मल स्वभाव में बहने लगता है।

उसीप्रकार यह चैतन्यजल अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु शुभ और अशुभ

विभावभाव से अनेक प्रकार की गति, योनियों में परिभ्रमण करता है। चैतन्यस्वरूप को छोड़कर विभाव में गमन करने के कारण संसार में चक्कर मारता है, परन्तु यह कोई जीव का स्वभाव नहीं है। वह अज्ञान से शुभाशुभ भावों में व्याप्त रहा है- इसकारण नरकगति, पशुगति, मनुष्यगति और देवगति को प्राप्त करता है। बाहर का शरीर वह कोई गति नहीं है, अन्दर में जीव की वैसी योग्यता है, वही मैं हूँ- ऐसा यह मानता है। मैं चीटीं, मैं कौआ, मैं बनिया, मैं धनवान- ऐसे अनेक प्रकार के संयोगों में एकत्व करता है। इसकारण इसको अपना वास्तविक स्वरूप ख्याल में नहीं आता। 'विभाव है वही मैं हूँ'-ऐसा मानता है। उन विकल्पों के जाल में फंसता हुआ भिन्न-भिन्न अवतार धारण करता दिखता है। वह भव-'सम्यक् सुभाव पाइ अनुभौ के पंथ छाई, बंध की जुगति भानि मुकति करतु है।'

जब जीव को ऐसा लगता है कि अरे! मैं तो चैतन्य आनन्दकंद हूँ, पवित्रता का पुंज हूँ, पुण्य-पाप के विकल्प तो अपवित्र हैं वे कोई मेरा स्वरूप नहीं...ज्ञान, आनन्द, स्वच्छता, वीतरागता यह मेरा स्वभाव है- ऐसा स्वभाव का सम्यक् श्रद्धान करता है तब उसको स्वभाव का सम्यक्भान और वेदन होता है। तत्पश्चात् जो दृष्टान्त में जैसे खेत में चला गया हुआ पानी फिर से अपने मूलप्रवाह में मिलकर ढाल वाले मार्ग से नदी में मिल जाता है; उसीप्रकार चैतन्य देव अनुभव के मार्ग से चलकर अपने पूर्ण स्वभाव को प्राप्त करता है। अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है।

अनादि से पुण्य-पाप के विभावरूप प्रवाह में जीव की भिन्न-भिन्न गति, योनि, कुल आदि अनेकरूप होते थे, वह कोई जीव का असली स्वरूप नहीं था। अपने को मनुष्य के रूप में पहिचानना अथवा दयादिक के विकल्प से पहिचानना अथवा संयोग से पहिचानना वह कोई जीव का स्वरूप नहीं है। वह तो पर घर है-विभाव का घर है-विभाव के भेद हैं- ऐसा जानकर जब जीव का वीर्य अनुभव के पंथ (मार्ग) में दौड़ता है तब अनुभव करते-करते जीव का मोक्ष हो जाता है-यह एक ही करने योग्य है।

जहाँ जीव आनन्दपूर्वक अनुभव के मार्ग में जाता है वहाँ बंध तो नष्ट होता जाता है। (बंध नहीं होता-इस कारण बंध का नाश किया कहा जाता है।) ज्ञानी

को अबंध स्वभावी भगवान आत्मा की लगन लगी है-इस कारण अनुभव में से बाहर आना रुचता नहीं है। ऐसे अनुभव के पंथ में लगकर-बंध की जगति भानि-ज्ञानी बंध के प्रकार को टाल देते हैं और-मुकति करतु है। मुक्ति प्राप्त करते हैं।

(जीव को) अनादि से पुण्य-पाप, दान, व्रतादि का वेदन था वह तो जहर का वेदन था और उससे तो कर्मबंध होता था। अब ज्ञानी उसका अभाव करके कर्मबंधन से मुक्ति का अनुभव करते हैं। जैनदर्शन का और सर्वज्ञ की वाणी का सार में सार यह है कि 'अपने स्वभाव को पहिचानकर उसका अनुभव करना'-यही सार में सार है।

इसप्रकार 49 वें कलश का 31 वां पद हुआ।

अब 50 वें कलश के 32वें पद में कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्त्ता है।

मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्त्ता है

निसि दिन मिथ्याभाव बहु, धरै मिथ्याती जीव।
तातैं भावित करमकौ, करता कह्यौ सदीव ॥32॥

अर्थः- मिथ्यादृष्टि जीव सदैव मिथ्याभाव किया करता है, इससे वह भावकर्मों का कर्त्ता है।

भावार्थः- मिथ्यात्वी जीव अपनी भूल से परद्रव्यों को अपना मानता है, जिससे मैंने यह किया, यह लिया, यह दिया इत्यादि अनेक प्रकार के रागादिभाव किया करता है, इससे वह भावकर्म का कर्त्ता होता है ॥32॥

काव्य - 32 पर प्रवचन

अहो! अत्यन्त अल्प शब्दों में भण्डार भर दिया है। जिसकी दृष्टि अपने आनन्द और ज्ञायक स्वभाव पर नहीं है उसकी दृष्टि पुण्य-पाप के विकल्प और व्यवहार के राग पर है। इस कारण मिथ्यादृष्टि जीव सदैव मिथ्याभाव किया करता है। इसका कारण यह है कि उसकी दृष्टि में आत्मा नहीं आया है और राग पर ही उसकी दृष्टि है - इसकारण वह राग ही किया करता है। विकल्प का कर्त्ता होना ही अज्ञान है। उसका कर्त्ता अज्ञानी ही होता है। कर्म के कारण से विकल्प का कर्त्ता होता है, ऐसा नहीं है। वह अज्ञान से ही विकल्प का कर्त्ता होता है, अन्य

कार्य तो वह कर नहीं सकता। व्यर्थ ही ऐसा मानता है कि मैंने पैसे कमाया और मैंने भाग कर दिया, मैंने दान में पैसा दिया – इसप्रकार अपने को अनेक प्रकार से पर के कार्यों का कर्त्ता मानता है; परन्तु यह जीव का कार्य नहीं है। जीव वैसा नहीं कर सकता।

अज्ञानी अनेक प्रकार से अपने को पर के कार्यों का कर्त्ता मानता हैं; परन्तु वह विकल्प से आगे बढ़कर अन्य कोई कार्य नहीं कर सकता–यह निर्णय सर्वप्रथम करना चाहिये।

(1) जीव पर के कार्य नहीं कर सकता।

(2) कर्म जीव को विकार नहीं कराता।

(3) द्रव्यस्वभाव से जीव विकार का कर्त्ता नहीं है; परन्तु अज्ञानभाव से जीव विकार का कर्त्ता होता है।

अज्ञानी जीव रात-दिन बदल-बदलकर विकल्प को ही किया करता है। विकल्प है वही राग-विकार है। ऐसा करुँ..ऐसा कर दूँ...मैंने यह लिया.. मैंने यह दिया..ऐसे अनेक प्रकार से मूढ़ अज्ञानी जीव राग का कर्त्ता होता है। ज्ञानी तो राग का कर्त्ता होता ही नहीं; कारण कि वह राग को अपने स्वरूप से भिन्न जानता है। अज्ञानी अपने स्वभाव को नहीं जानता और राग को अपना मानता है–इसकारण वह राग का कर्त्ता होता है। क्रमशः

जून 2025 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

3 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 8 **अष्टमी**

7 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 12
श्री सुपार्श्वनाथ जन्म-तप कल्याणक

10 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 14 **चतुर्दशी**

13 जून – आषाढ़ कृष्ण 2
श्री आदिनाथ गर्भ कल्याणक

17 जून – आषाढ़ कृष्ण 6
श्री वासुपूज्य गर्भ कल्याणक

19 जून – आषाढ़ कृष्ण 8 **अष्टमी**
श्री विमलनाथ मोक्ष कल्याणक

20 जून – आषाढ़ कृष्ण 9-10
श्री नमिनाथ जन्म-तप कल्याणक

24 जून – आषाढ़ कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

26 जून – आषाढ़ शुक्ल 1
श्री नेमिनाथ ज्ञान कल्याणक

द्रव्यानुयोग

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न — विभाव को तथा वर्तमान पर्याय को गौण करके स्वभाव का आलम्बन करने को कहा जाता है; परन्तु स्वभाव तो दिखायी नहीं देता, वर्तमान विकार ही दिखता है।

समाधान — जो नहीं दिखता उसे देखने का प्रयत्न करना, अर्थात् जो अदृश्य है, उसे दृश्यमान करना और जो दिखता है, उसे गौण करना। स्वभाव अदृश्य लगता है, परन्तु वह दिखाई दे ऐसा है। उसे स्वयं नहीं दिखता है इसलिए वह अदृश्य अर्थात् गुप्त हो गया है, ऐसा नहीं है; वह दिखे, लक्ष्य में आये, उसके दर्शन हों एवं ज्ञान में आये ऐसा है। इसलिए उसे दृश्यमान करने का प्रयत्न करना। सबको ज्ञानस्वभाव तो जानने में आ ही रहा है; उस ज्ञान के लक्षण द्वारा—गुण द्वारा—गुणी को पहिचान लेना। गुण-गुणी के भेद होते हैं, परन्तु वह एक ही वस्तु है, भिन्न नहीं। शास्त्र में आता है कि लक्षण से लक्ष्य को पहिचान लेना, पहिचानने का प्रयत्न करना। लक्ष्य को - ज्ञान - स्वभाव को पहिचानने से, उसमें दृष्टि देने से तथा उसमें तन्मयता होने से शान्ति और सुख प्राप्त होता है। उसमें से ही अपार एवं आगध ज्ञान प्रगट होता है। उसे ग्रहण करने से अपूर्व वीतरागी दशा एवं आनन्द प्रगट होता है। यह अनादिकाल के सर्व विभाव तो आकुलतारूप तथा दुःखरूप हैं। उन्हें टालने के लिये निराले तत्त्व को ग्रहण करना।

प्रश्न — रागी जीव भेद का लक्ष्य करे तो राग उत्पन्न होता है, तब सामर्थ्य का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन किस प्रकार हो ? क्योंकि सामर्थ्य भी एक अंश है न ?

समाधान — सामर्थ्य में एक अंश नहीं लेना, परन्तु अनन्त शक्ति से परिपूर्ण आत्मा को लेना और उसमें भी अखण्ड द्रव्य का आश्रय लेना है; एक गुण का आश्रय लेना ऐसा नहीं है। वह अखण्ड द्रव्य कैसा है ? कि अनन्त शक्ति से—अनन्त सामर्थ्य से भरा है। उस द्रव्य का आश्रय लेने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। जब कि विभाव के आश्रय से अथवा पर्याय और गुणभेद पर दृष्टि रखने

से तो राग होता है। इसलिए अन्तर में एक अखण्ड द्रव्य का आश्रय लेना।

मुमुक्षु — ध्रौव्य को अंश कहा जाता है न? वह तो विभाग हुआ, तब अखण्ड वस्तु किस प्रकार है?

बहिनश्री — ध्रौव्य अखण्ड वस्तु है। किसी अपेक्षा से उसे अंश के रूप में भी लिया जाता है; तथापि उस अंश में और इस पर्याय के अंश में फेर है। उत्पाद-व्यय पलटते अंश हैं और यह तो शाश्वत ध्रुव अंश है जो कि स्थिर है, पूर्ण है। उत्पाद-व्यय पलटते अंश होने से वे ज्ञान में गौण होते हैं; जब शाश्वत ध्रौव्य को ग्रहण किया उसमें पूर्ण अस्तित्व आ जाता है। जो पलटता है वह ज्ञान में आता है, परन्तु पलटता है, उसका आश्रय नहीं लिया जाता। जो शाश्वत है उसी का ही आश्रय लिया जाता है। जो दूसरे ही क्षण पलट जाता है, उसका आश्रय नहीं लिया जाता।

ध्रुव में पूर्ण सामर्थ्य है। उत्पाद-व्यय पलटता है, वह भी द्रव्य का स्वरूप है; परन्तु वह पलटता रहता है इसलिए उसका—पलटनेवाले का—आश्रय नहीं लिया जाता, शाश्वत ध्रुव का ही आश्रय लिया जाता है। शाश्वत ध्रुव है वह अनन्त गुण से—अनन्त शक्तियों से भरपूर है। शाश्वत ध्रुव है वह शून्यवत् अकेला नहीं है; अनन्त गुण—शक्ति से भरपूर ध्रुव है। उसे लक्ष्य में लिया तो दूसरा कुछ बाकी नहीं रह जाता; उसके आश्रय में सब आ जाता है। पर्याय कहीं आश्रय लेने योग्य नहीं है, उसका वेदन होता है। द्रव्य के आश्रय में पर्याय आती ही नहीं; जो शाश्वत ध्रुव है वही आश्रय में आता है; और शाश्वत् ध्रुव आश्रय में आया उसमें सब आ जाता है, कुछ बाकी नहीं रहता। शाश्वत का आश्रय लेने से राग नहीं होता, अपितु छूट जाता है।

क्रमशः

अपनी प्रति आरक्षित करें

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया द्वारा विरचित **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** का नवीन संस्करण का प्रकाशन तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया जा रहा है। अपनी प्रतियाँ आरक्षित करावें।

सम्पर्क सूत्र : पंडित अभिषेक शास्त्री - 9997996346

द्रव्यानुयोग

योगसार ग्रन्थ पर परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

परिहारिविशुद्धि चारित्र

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मद्दंसण-सुद्धि।
सो परिहारविसुद्धि मुणि लहु पावहि सिवसिद्धि॥ 102॥

मिथ्यात्वादिक परिहरण, सम्यग्दर्शन शुद्धि।
सो परिहार विशुद्धि है, करे शीघ्र शिव सिद्धि॥

अन्वयार्थ - **(जो मिच्छादिउ परिहरणु)** जो मिथ्यात्वादि का त्याग करके **(सम्मद्दंसणसुद्धि)** सम्यग्दर्शन की शुद्धि प्राप्त करना। **(सो परिहारविसुद्धि मुणि)** वह परिहारविशुद्धि संयम जानो **(लहु सिवसिद्धि पावहि)** जिससे शीघ्र मोक्ष की सिद्धि मिलती है।

☆★☆

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मद्दंसण-सुद्धि।
सो परिहारविसुद्धि मुणि लहु पावहि सिवसिद्धि॥ 102॥

ऐसी शैली ली है। परिहारविशुद्धि अर्थात् प्रचलित रूढ़ि अनुसार तो ऐसा है कि स्वरूप जो है, परिहारविशुद्धि का वह विशेष साधु को प्राप्त होता है। तीस वर्ष के बाद, अमुक प्रकार का संसार में रहा हो और फिर भगवान के पास आठ वर्ष रहकर संगति प्रत्याख्यान पूर्व का अभ्यास आदि किया हो तो उसे होता है। यह तो किसकी दशा, इस प्रकार (कहा है) परन्तु यहाँ तो उसे वास्तविक परिहार, वास्तविक परिहार को मिथ्याश्रद्धा का त्याग **सम्मद्दंसण-सुद्धि** उसका वास्तविक परिहार कहते हैं, यहाँ तो... आहा...हा...!

जो मिथ्यात्वादि का त्याग करके.... आदि शब्द है न? मिथ्यात्व - भ्रम, अस्थिरता, अव्रत, कषाय आदि के मलिन परिणाम, वहाँ से परिहार उठाया। समझ में आया? जिसने परमात्मा निजस्वरूप का अन्तर श्रद्धा और ज्ञान द्वारा सत्कार किया है, आदर किया है। जिसने परमात्मा स्वयं पूर्णानन्दस्वरूप है - ऐसा श्रद्धा और ज्ञान में उपादेय रूप से किया है, उसका अर्थ कि उसका सत्कार,

आदर किया है। अनादि से उसका अनादर करता था और पुण्य तथा पाप के विकल्पों का अनादि से अकेला एकान्त आदर करता था। समझ में आया? उसे छोड़कर जो **सम्यग्दर्शन की शुद्धि प्राप्त करना...** वहाँ 'एक' शब्द लिया है। यह तो अष्टपाहुड़ में आता है न? **सम्मद्दंसण...** एक सम्यक्त्व में परिणत हुआ आठ कर्मों का नाश करता है - ऐसी अष्टपाहुड़ में गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य... वहाँ जोर देना है - सम्यग्दर्शन। स्वरूप की जो श्रद्धा पूर्ण-पूर्ण हुई है। उसकी ओर के झुकाव में वही का वही परिणमन ऐसा जहाँ चला (तो) आठों ही कर्म का नाश हो जाता है। '**समस्त परिणमणुं अठ कम्मं**' नाश होता है - ऐसा पाठ है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान परमानन्द अनन्त गुण का धाम की जहाँ अन्तरस्वभाव में एकाकार होकर थाप मारी, आदर किया कि यही आत्मा है (वहाँ) सब परिहार हो गया। समझ में आया? मिथ्यात्व का परिहार और राग-द्वेष का भी जहाँ परिहार अर्थात् त्याग अर्थात् अभाव हुआ और भगवान आत्मा के स्वरूप की पूर्ण प्रतीति का आदर और स्वरूप में स्थिरता हुई, उसे यहाँ परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। आहा...हा...! दर्शन पर अधिक जोर दिया है न!

वस्तु सम्यग्दर्शन बिना एक कदम भी धर्म में आगे नहीं चल सकता। भगवान पूर्णानन्द प्रभु जिसकी दृष्टि में परमात्मा निजस्वरूप का साक्षात्कार हुआ, उसे वास्तव में परमात्मा का श्रद्धा-ज्ञान में साक्षात्कार हुआ है। समझ में आया? लोग नहीं कहते? कि ए... तुम्हें भगवान का साक्षात्कार हुआ? भगवान मिले तुझे? वे भगवान परमेश्वर स्वयं जिसकी श्रद्धा और ज्ञान में अन्तर्मुख होने से साक्षात्कार हुआ, उसका सम्यग्दर्शन और शान्ति का परिणमन (हुआ), उसे यहाँ परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। अध्यात्म की बात ली है न! वह क्रिया व्यवहार की है, उस बात को ज्ञान में लिया। समझ में आया?

यहाँ अध्यात्मदृष्टि से शब्दार्थ लेकर कहा है... इन्होंने खुलासा किया है शीतलप्रसादजी ने! **यहाँ अध्यात्मदृष्टि से शब्दार्थ लेकर कहा है कि मिथ्यात्वादि विषयों का त्याग करके सम्यग्दर्शन की विशेष शुद्धि प्राप्त करना वह परिहार विशुद्धि है।** दूसरे प्रकार से कहें तो मिथ्यात्व-श्रद्धा का

विषय पर है। विपरीत श्रद्धा का विषय पर है। राग-द्वेष, यह... यह... यह... पूरी चीज सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? मिथ्यात्वश्रद्धा में तो यह राग, द्वेष, पुण्य, पाप यह... यह... यह... फिर यह अल्पज्ञ यह अस्ति पूरा आता है। ऐसा विषय जिसे छूट गया है, उसे सम्यग्दर्शन में स्वविषय जिसे प्राप्त हुआ है और रागादि में परविषय पर है। राग-द्वेष की पर्याय में झुकाव पर के प्रति जाता है, उस श्रद्धा का विषय पर था, इस राग-द्वेष की अस्थिरता में भी, प्रशस्त देव-गुरु आदि या अप्रशस्त स्त्री, परिवार - उसका विषय पर ऊपर जाता है। इसका विषय ऐसा अन्दर में बदल गया है। समभाव से जिसने आत्मा को विषय बनाया है - ऐसे चारित्र को परिहारविशुद्धिचारित्र अध्यात्म शब्दार्थ से कहा है। आहा...हा...! समझ में आया?

दिगम्बर आचार्यों ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न विधि से आत्मा को गाया है। समझ में आया? क्योंकि आचार्य का क्षयोपशम भी, भिन्न-भिन्न व्यक्ति है इसलिए (भिन्न -भिन्न) होता है और उनकी स्थिरता के प्रकार में भी बहुत अन्तर पड़ता है। षट्गुण हानि -वृद्धि होती है, भले छठवाँ गुणस्थान हो परन्तु पर्याय के भेद हैं। इसलिए उनकी कथन पद्धति में भी अलग-अलग प्रकार की शैली से अध्यात्म को प्रसिद्ध किया है। समझ में आया?

शुद्ध आत्मा का (निर्मल) अनुभव ही मोक्षमार्ग है। उसके बाधक मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है। उन्हें छोड़कर जहाँ ज्ञान और चारित्र एकदेश झलकते हैं... ज्ञान और चारित्र। स्वरूप का ज्ञान। ज्ञान और चारित्र अर्थात्? यह ज्ञानमूर्ति वह झलकती है, पर्याय में प्रगट होता है और स्वरूप की स्थिरता आत्मा में प्रगट होती है। **उसकी पूर्ण प्रगटता के लिए अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय का नाश करके जैसे-जैसे स्वानुभव का अधिक अभ्यास होता है, वैसे-वैसे कषाय की मलिनता कम होती जाती है। श्रावकपद में देशचारित्र होता और साधुपद में सकलचारित्र होता है।** समझ में आया? इन्होंने भेद पाड़ा है। वस्तुतः तो वह परिहारविशुद्धि है। वह तो मुनि को होता है परन्तु इन्होंने जरा भेद (किया है), वास्तव में यह तो मुनि को है।

क्रमशः

चरणानुयोग

गतांक से आगे

साधु तथा श्रावक के परिप्रेक्ष्य में षट् आवश्यक

कायोत्सर्ग – काय का त्याग करना सो कायोत्सर्ग है। यहाँ काय शब्द से काय का ममत्व लिया गया है। उसका त्याग, कायोत्सर्ग है।

पंडित आशाधरजी कहते हैं –

स्वाध्याये द्वादशेष्टा षड्वन्दनेऽष्टौ प्रतिक्रमे।
कायोत्सर्गा योगभक्तौ द्वौ चाहोरात्रगोचराः॥

स्वाध्याय के बारह, वन्दना के छह, प्रतिक्रमण के आठ और योगभक्ति के दो – ये सब मिलाकर 28 कायोत्सर्ग। इस प्रकार मुनि को आलस्य छोड़कर कायोत्सर्ग करना चाहिए। इस तरह के छह आवश्यक हैं।

आवश्यकों की उपयोगिता बताते हुए कुन्दकुन्दस्वामी ने कहा है –

आवासएण हीणो पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।
पुव्वुत्तकमेण पुणो तम्हा आवासयं कुज्जा॥

आवश्यक रहित श्रमण, चारित्र से भ्रष्ट है; इसलिए पूर्वोक्त विधि से आवश्यक नियम से करना चाहिए। जितेन्द्रिय साधु का जो कार्य है, वह आवश्यक कहलाता है।

छह आवश्यक पालने का एकमात्र उद्देश्य है, आत्मा में निश्चल स्थिति। चारित्र मात्र का यही उद्देश्य है और चारित्र का लक्षण भी आत्मस्थिति ही है।

इसप्रकार साधुओं के षट् आवश्यक का वर्णन हुआ।

श्रावकों के षट् आवश्यक

अब श्रावकों के षट् आवश्यक का वर्णन करते हैं—

श्रावक का लक्षण लिखते हुए पं. आशाधरजी ने कहा है कि –

मूलोत्तरगुणनिष्ठामधितिष्ठन् पञ्चगुरुपदशरण्यः।
दानयजनप्रधानो ज्ञानसुधां श्रावकः पिपासुः स्यात्॥

जो आठ मूलगुण तथा बारह व्रत रूप उत्तर गुणों का पालन करता है, पंच परमेष्ठियों के चरणों की शरण जिसे प्राप्त हुई है जो प्रधानता से दान और पूजन

करता है तथा ज्ञानरूपी अमृत के पीने की इच्छा रखता है, वह श्रावक कहलाता है।

पद्मनन्दि आचार्य ने श्रावक के निम्नलिखित जिन आवश्यक कार्यों का दिग्दर्शन कराया है, उनका समावेश श्रावक के उपर्युक्त लक्षण में अच्छी तरह हो जाता है।

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानञ्चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने॥

देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - ये छह गृहस्थों के प्रतिदिन करनेयोग्य आवश्यक कार्य हैं।

'**मूलोत्तरगुणनिष्ठामधितिष्ठन्**' इस विशेषण से संयम और तप का, '**पञ्चगुरुपदशरण्यः**' इस विशेषण से गुरुपासना का, '**दानयजनप्रधानो**' इस विशेषण से देवपूजा और दान का तथा '**ज्ञानसुधां पिपासु**' इस विशेषण से स्वाध्याय का समावेश होता है। देवपूजा आदि कार्य शुभोपयोग रूप होने से यद्यपि पुण्यबन्ध के कारण हैं, तथापि आत्मा के वीतराग स्वभाव की ओर ले जाने में परम सहायक हैं।

षट् आवश्यकों के नाम निम्नानुसार हैं -

1. देवपूजा, 2. गुरु उपासना, 3. स्वाध्याय, 4. संयम, 5. तप और 6. दान। अब इनके स्वरूप का वर्णन करते हैं -

देवपूजा - सच्चे देव का स्वरूप समझकर उनके गुणों का स्तवन ही व्यवहार से भाव देवपूजा है। ज्ञानी श्रावक वीतरागता और सर्वज्ञता आदि गुणों का स्तवन करते हुए विधिपूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन करते हैं, उसे द्रव्य पूजा कहते हैं। ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि निश्चय से भाव देव पूजा है।

पूजा करते समय किसी लौकिक फल की आकांक्षा न रखकर अपने ज्ञानानन्द स्वभावी वीतराग स्वरूप आत्मा की ओर लक्ष्य रखना चाहिए।

गुरु उपासना - निर्ग्रन्थ गुरु मोक्षमार्ग के साधक हैं; अतः गुरु का सच्चा स्वरूप समझकर उनकी उपासना करना व्यवहार से गुरु उपासना है।

ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि ही निश्चय से गुरु उपासना है। *क्रमशः*

क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी

आपका जन्म अक्टूबर 1921 में पानीपत (हरियाणा) में हुआ। पिता बाबू जयभगवान जी एक ख्याति प्राप्त एडवोकेट, आप जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान और उच्चकोटि के विचारक थे।

1938 में दुर्भाग्य से क्षयरोग के कारण वर्णीजी का एक फेफड़ा सदा के लिए बन्द कर दिया गया। डॉक्टरों ने मांसाहार की सलाह दी, किन्तु जीवन के मूल्य पर मांसाहार स्वीकार नहीं किया। इस संकल्प-शक्ति ने जीने की एक अपराजेय शक्ति प्रदान की। अपनी उस दुर्बल काया के बावजूद प्रयत्नपूर्वक इलेक्ट्रिक एवं वायरलैस प्रौद्योगिकी में उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1951 में वे कलकत्ता में एम.इ.एस. कान्ट्रक्टर हो गये।

साधनों की सुलभता तथा अच्छे व्यापार के बावजूद सांसारिक माया में मन न रमा तो अपने दोनों छोटे भाइयों को सब सँभलवा कर 1957 में घर से निकल पड़े।

सिद्धान्त-शास्त्रों के अनवरत स्वाध्याय, मनन और निदिध्यासन के कारण एक ही वर्ष में शास्त्र-सभा में प्रवचन करने की कुशलता प्राप्त की। प्रवचन हेतु अनेक नगरों में भ्रमण किया। पश्चात् ईसरी में आध्यात्मिक सन्त क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। 1961 में क्षुल्लक-दीक्षा ग्रहण की। कालान्तर में अस्वस्थता के कारण क्षुल्लक अवस्था को सरस्वती की आराधना में अनुकूल न देख, सत्यनिष्ठापूर्वक पुन: ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, लेकिन जीवन पूर्ववत् पूर्णरूप से विरक्त और नि:स्पृही रखा। ज्ञानपिपासु वृत्ति। आप सर्वथा अनाग्रही और वैज्ञानिक दृष्टि के धारक थे।

12 अप्रैल 1983 को ईसरी में सल्लेखना व्रत धारण किया और पुन: क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर 24 मई 1983 को समाधिमरण किया।

आपकी कृतियाँ : शान्तिपथ-प्रदर्शक (1960), श्रद्धाबिन्दु (1961), नयदर्पण (1965), कुन्दकुन्द-दर्शन (1966), कर्मसिद्धान्त (1968), जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (1970), सत्यदर्शन (1972), महायात्रा (1973), वर्णीदर्शन (1974), समणसुत्त (1974), पदार्थ-विज्ञान (1977) और कर्मरहस्य (1981)।

समाचार-दर्शन

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

द्रोणागिरि : 15 वाँ श्रुत पंचमी महोत्सव एवं श्रुत षट्खण्डागम श्रुत आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का भव्य मांगलिक आयोजन श्री 1008 दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र द्रोणागिरि (लघु सम्मेद शिखर), द्रोणागिरि, सेंधपा, जिला-छतरपुर (म.प्र.) में दिन रविवार 25.05.2025 से 02.06.2025 तक जैनिजम थिंकर संस्थान दिलशाद गार्डन दिल्ली एवं अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में किया गया है। शिविर के सूत्रधार श्री नीरज जैन दिल्ली की प्रबल भावना से ही शिविर का आयोजन हुआ। ध्वजारोहण श्री अशोक जैन भोपाल के करकमलों से किया गया और शिविर का उद्घाटन पं. राजकुमारजी की अध्यक्षता में मुख्यअतिथि आगम जैन, आईपीएस एवं आलोक जैन तहसीलदार बड़ामलहरा की उपस्थिति में हुआ।

इस आध्यात्मिक शिक्षण शिविर में 9 दिन प्रात: 6 बजे से श्री जिनाभिषेक, षट्खंडागम विधान पूजन पंडित दीपक जी धवल शास्त्री भोपाल, देवेन्द्र जी मंगलार्थी ग्वालियर के साथ मंगलमय प्रारंभ होता था, साथ में प्रवचन की श्रृंखला में पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी जी के सी.डी. प्रवचन तथा श्री षट्खंडागम जी ग्रन्थ की श्री धवला टीका 1 के माध्यम से आदरणीय पंडित जे.पी. दोशी जी मुंबई के द्वारा सायंकाल स्वाध्याय, मार्गणा का स्वरूप और पूर्व आचार्य परंपरा की सुंदर कथा पंडित विकास जी छाबड़ा शास्त्री इंदौर के द्वारा सुनी, पर्याप्ति और प्राण विषय पर पंडित डॉ.सचिंद्र जी शास्त्री मंगलायतन द्वारा कक्षा का संचालन किया गया और पंडित अनिल जी शास्त्री जयपुर द्वारा मोक्षशास्त्र अध्याय एक के माध्यम से कक्षा का लाभ मिला। पंडित राजकुमार जी द्रोणागिरी, पंडित अजीत जी शास्त्री अलवर, ब्र. नीलिमा दीदी द्रोणागिर, ब्र. मीना दीदी टीकमगढ़, डॉ. सुरभी खंडवा आदि विद्वानों का भी प्रवचनों का लाभ मिला।

दोपहर में प्रतिदिन श्री षट्खंडागम जी के सूत्र का पाठ प्रवचन, पंच परमागम मोक्षशास्त्र षट्खंडागम और मोक्षमार्ग प्रकाशक पर संगोष्ठी इस प्रकार आठ संगोष्ठी सम्पन्न हुईं, अंतिम दिन विद्वत सम्मेलन, बुन्देलखंड शास्त्री परिषद परिचर्चा श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक जी ग्रन्थ के आधार से की गई। संध्या कालीन श्री जिनेन्द्र भक्ति, प्रवचन एवं उपसर्ग विजय गुरुदत्त मुनिराज के जीवन पर आधारित लघु नाटिका का मंचन सिद्धायतन के बच्चों द्वारा किया गया।

ये सोलह शास्त्र श्री धवला जी, चार अनुयोग, पंच परमागम आदि अन्य 33 जिनवाणी विराजमान की गई।

शिविर समापन दिवस में लघु सम्मेद शिखर जी के नाम से प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र द्रोणागिर जी पर्वत की सामूहिक वंदना, श्री पंच परमेष्ठी विधान, प्रवचन के तथा श्री जिन श्रुत आराधना के संकल्प के साथ किया गया। इस पूरे शिविर में करीब प्रत्येक दिन ढाई सौ साधर्मी भाइयों ने लाभ लिया।

श्रुत पंचमी संगोष्ठी सम्पन्न षट्खंडागम का ओंकारनाद

तीर्थधाम मङ्गलायतन : शनिवार, 31 मई 2025 तिथि ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, वीर निर्वाण संवत 2551 को बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबहन की अध्यक्षता में दो दिवसीय गोष्ठी सम्पन्न हुई। आपके द्वारा ही मङ्गलायतन में विगत पाँच वर्षों से धाराप्रवाह वाचना भी चल रही है।

जिसका मंगलाचरण श्रीमती शीतलबहन, लंदन; मुख्य अतिथि डॉ. ऋषभ शास्त्री, दिल्ली; संचालन श्रीमती मोनिका जैन, इंदौर द्वारा किया गया।

जिसके विषय क्रमश: इस प्रकार थे — 1. आदिनाथ से आचार्यों तक श्रुत का प्रवर्तन, करते हम वंदन, करते हम अभिनंदन, (वक्ता : अंतिम भैया, इंदौर); 2. युग प्रतिक्रमण अर्हदबलि का, भाग्य खुला भव्य जीवों का, (वक्त्री : राजुलजी, बेंगलुरु); 3. श्रुत संरक्षण का सतत प्रयास, हमें करना इसका अभ्यास, (वक्त्री : श्रीमती ममता जैन, उदयपुर); 4. सर्वज्ञता की सिद्धि, सिद्ध हो गई महाबंध से, (वक्त्री : ज्योति जी, उज्जैन); 5. विशेष बिंदु, विशेष अपेक्षा से, सरल करो महाबंध को, (वक्त्री : वीना जी, दिल्ली); 6. श्रुत पंचमी को जान लो, इसके महत्व को पहचान लो, (वक्त्री : नीरा जी, खड्गपुर)।

द्वितीय दिन रविवार, 1 जून 2025; ज्येष्ठ शुक्ल, षष्ठी, वीर निर्वाण संवत 2551 मंगलाचरण मुग्धा जी, पूना; संचालन श्रीमती ज्योति जी, उज्जैन; मुख्य अतिथि पंडित स्वानुभव शास्त्री, खनियांधाना थे।

जिसके विषय क्रमश: इस प्रकार हैं - 1. पर्यायों की क्षणभंगुरता के, क्षण क्षण को पहचानो महाबंध से (वक्त्री : सुजाता जी, गुना); 2. क्रमबद्धता की निरंतरता को, सहज बना दिया महाबंध ने, (वक्त्री : डॉ. विमला जी, नागपुर); 3. षट्खंडागम के स्वाध्याय से, दूर हो जाएगी भ्रमणा सारी, (वक्त्री : अनुराधा जी, कोलकाता); 4. श्रुत से पाई हर ताले की दो चाबी, स्याद्वाद और अनेकांत, (वक्त्री : मोनिका जी, इंदौर); 5. परिणामों की विचित्रता, जानो महाबंध से (वक्त्री : मंजू जी, इंदौर) थीं।

षट्खण्डागम अर्थात् छह भागों वाला धर्मग्रन्थ। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का सर्वोच्च और सबसे प्राचीन पवित्र धर्मग्रन्थ है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार मूल वैधानिक शास्त्र महावीर भगवान के निर्वाण के कुछ शताब्दियों के बाद ही लुप्त हो गये थे। अत: 'प्रथम श्रुतस्कन्ध षट्खण्डागम' को आगम का स्थान दिया गया है और इसे सबसे श्रद्धेय माना गया है। दिगम्बरों के लिए षट्खण्डागम का महत्त्व इस बात से लगाया जा सकता है कि जिस दिन षट्खण्डागम महा सिद्धान्त ग्रंथ को पूरा किया गया था, उस दिन को श्रुतपंचमी महोत्सव के रूप में जिनधर्म में धूमधाम से मनाया गया।

शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

चैतन्यधाम (अहमदाबाद) : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा 57वाँ श्री वीतराग विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न। दिनांक 18 मई से 4 जून 2025 तक आयोजित किया गया। 18 मई को उद्घाटन सभा की अध्यक्षता श्री सुभाषभाई कोटडिया वापी द्वारा की गयी।

दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहा – प्रौढ़ कक्षा 6 बजे से 6.30 बजे तक डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल धर्मसन्देश चैनल के माध्यम से। 6 से 8 बजे तक जिनेन्द्र प्रक्षाल, पूजन एवं विधान। 8.30 से 11 बजे तक पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, विद्वानों द्वारा प्रवचन एवं सामूहिक कक्षा। दोपहर 2 बजे से 3 बजे तक कक्षाओं का संचालन, 3 से 4 तक प्रवचन, 4 से 5 विभिन्न कक्षाओं का संचालन। सायंकाल 6.15 से 7 बजे तक जिनेन्द्र भक्ति, 7 से 8 प्रवचन, 8 से 9 बजे तक सांस्कृतिक कार्यक्रम। सभी कार्यक्रम प्रमुख विद्वानों पंडित शान्तिकुमार पाटील, डॉ. राकेश जी नागपुर, पंडित राकेशजी लोनी, पंडित अभयकुमारजी देवलाली, बालब्रह्मचारी अभिनन्दनकुमार जैन, पंडित शैलेषजी, पंडित कमलजी पिड़ावा, पंडित परमात्मप्रकाश भारिल्ल, पंडित अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल, पंडित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, पंडित बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी, पंडित निखलेशजी, डॉ. प्रवीण, पंडित निलय शास्त्री, पंडित गणतंत्र शास्त्री, पंडित संजय सेठी, पंडित जिनकुमार, पंडित रितेश, डॉ. सोनूजी अहमदाबाद, डॉ. मनीष मेरठ, डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, पंडित अमन लोनी, पंडित मनीष कहान इसके अलावा करीब सौ विद्वानों की उपस्थिति में शिक्षण-प्रशिक्षण प्रवेशार्थी शिविरार्थियों को दिया गया।

इस अवसर पर चैतन्यधाम ट्रस्ट के सभी ट्रस्टी प्रतीकभाई शाह, रमेशभाई, राजूभाई, भरतभाई टिम्बडिया, नागरदास मोदी, सुरेशभाई शाह आदि उपस्थित थे।

एक विचारणीय तथ्य.....

जैनियों का जिनवाणी पर अत्याचार.....

स्व. पंडित श्री जुगलकिशोरजी युगवीर मुख्तार के महत्वपूर्ण उद्‌गार

जैनियों ने जिनवाणी माता के साथ जैसा सलूक किया, उसको याद करके हृदय तो कांपता है और शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, इन्होंने (जिनवाणी) माता को उन अंधेरी कोठरियों में बन्द करके रखा जहाँ रोशनी और हवा का गुजर नहीं, उसका अंग चूहों से कुतरवाया और दीमकों को खिलाया, माता गलती है या सड़ती, जीती है या मरती, इसकी इन्होंने कुछ भी परवाह नहीं की। हजारों जैन ग्रंथों की मिट्टी हो गयी। हजारों शास्त्र चूहों और दीमकों के पेट में चले गये। लाखों और करोड़ों मनुष्य मातृवियोग दुख से पीड़ित रहे। परन्तु इन समस्त दृश्यों से जैनियों का हृदय जरा भी कंपायमान नहीं हुआ और इन्हें कुछ भी लज्जा या शर्म नहीं आई।

इन्होंने उल्टी यहाँ तक निर्लज्जता धारण की कि अपने इन अत्याचारों का नाम विनय रख छोड़ा। वास्तव में इनका नाम विनय नहीं। ये घोर अत्याचार है और न ढाई हाथ दूर से हाथ जोड़ने या चावल के दाने चढ़ा देने का नाम ही विनय नहीं है। जिनवाणी का विनय है – जैन शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना उनके मुताबिक उनकी शिक्षाओं के अनुसार चलना और उनका सर्वत्र प्रचार करना।

इन वास्तविक विनय से जैनी कौसों दूर रहे और इसीलिए इन्होंने माता का घोर अविनय ही नहीं किया, बल्कि कितने ही जैन शास्त्रों का लोप भी किया है। उसी का फल है जो आज बहुत से शास्त्र नहीं मिलते। इनकी विलक्षण विनय वृत्ति को देखकर ही एक दुखित हृदय कवि ने कहा है –

बस्ते बंधे पड़े हैं अलूमोफनून के।
चाँवल चढावें उनको बस इतने काम के॥

अर्थात् अलूमोफनून (विद्या, ज्ञान, विज्ञान) के बस्ते बँधे हुए हैं, उनके ज्ञान आदि का कोई उपयोग नहीं, वे तो केवल चावल चढ़ाने के काम के हैं।

(देखिये - युगवीर निबंधावली, भाग-1, पृष्ठ 115-116)

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

पुरुष ही मुनि होते हैं

आचार्य व उपाध्याय – इन दो पदवीधारकों के अलावा अन्य समस्त जो मुनिपद के धारक हैं, वे मुनि हैं, वे आत्मस्वभाव को साधते हैं। 'साधु' शब्द द्वारा निजस्वरूप की साधना की बात ही मुख्यता से की है। आत्मा के भानपूर्वक निजस्वभाव को साधते हैं व आत्मा में लीन होते हैं – ऐसे मुनि, पुरुष ही होते हैं। स्त्री को तीन काल में भी मुनिपना नहीं होता। जिनकी बाह्य-अभ्यन्तर निर्ग्रन्थदशा होती है, वे ही मुनि हैं। जो स्त्री के साधु-पद मानते हैं, उनका तो 'नमस्कार मन्त्र' भी सच्चा नहीं है। अट्ठाईस मूलगुण-पालन, नग्न दशा, परीषहजय आदि जैन मुनियों की यही दशा होती है। परीषहजय में स्त्री को परीषहरूप में लिया है, अतः पुरुष ही मुनि होते हैं – यह सिद्ध होता है।

(– परमागमसार, 824)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com